

भारतीय निर्वाचन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता: पारदर्शिता, जवाबदेही एवं लोकतांत्रिक सुदृढ़ीकरण का अध्ययन

हर्षा जैन¹, डॉ. सरोज कुमार²

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)¹

पर्यवेक्षक, राजनीति विज्ञान विभाग, भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)²

सारांश

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यहाँ चुनावी प्रक्रिया की निष्पक्षता, पारदर्शिता और समावेशिता लोकतांत्रिक वैधता की बुनियादी शर्त है। स्वतंत्रता के बाद से निर्वाचन प्रबंधन, इलेक्ट्रॉनिक मतदान और मतदाता पंजीकरण में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। फिर भी राजनीति का अपराधीकरण, चुनावी खर्च और राजनीतिक चंदे की अपारदर्शिता, निर्वाचन संस्थाओं की स्वायत्तता, मतदाता सूचियों की शुद्धता, महिलाओं का सीमित प्रतिनिधित्व और बार-बार होने वाले चुनावों से उत्पन्न शासन-संबंधी दबाव जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। यह समीक्षा-शोधपत्र चुनाव सुधारों पर उपलब्ध पूर्ववर्ती कार्यों का मेटा-विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें गोस्वामी समिति से लेकर विधि आयोग के प्रतिवेदनों, उच्चतम न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णयों, कोविंद समिति की रिपोर्ट और राजनीति विज्ञान तथा अर्थशास्त्र के अनुभवजन्य शोधों तक के स्रोतों का व्यवस्थित संकलन, वर्गीकरण और विषयगत संश्लेषण किया गया है। पद्धति के रूप में PRISMA-प्रेरित समीक्षा-प्रारूप और विषयगत मेटा-संश्लेषण अपनाया गया है, क्योंकि स्रोतों की विषम प्रकृति के कारण परिमाणात्मक पूलिंग संभव नहीं थी। निष्कर्ष बताते हैं कि पिछले तीन दशकों में सुधार मुख्यतः न्यायिक हस्तक्षेप और नागरिक समाज की पहल से आगे बढ़े हैं, जबकि विधायी सुधार धीमे और खंडित रहे हैं। उम्मीदवारों के शपथ-पत्र के माध्यम से सूचना का अधिकार, नोटा, दोषसिद्ध जनप्रतिनिधियों की तत्काल अयोग्यता और चुनावी बॉन्ड योजना का निरस्त होना न्यायपालिका-प्रेरित उपलब्धियाँ हैं। अपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों का चयन, दलों के भीतर आंतरिक लोकतंत्र का अभाव और चुनावी वित्त की कमजोर निगरानी अब भी अनसुलझी हैं। 'एक राष्ट्र, एक चुनाव', विशेष गहन पुनरीक्षण (SIR) और निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति जैसे समसामयिक विषय सुधार-विमर्श के केंद्र में हैं। इन पर साक्ष्य-आधारित और संघीय संतुलन को ध्यान में रखने वाला दृष्टिकोण आवश्यक है। शोधपत्र का निष्कर्ष है कि भविष्य के सुधार पैकेज-आधारित होने चाहिए, जिनमें संस्थागत स्वतंत्रता, वित्तीय पारदर्शिता, दल-सुधार, तकनीकी सुरक्षा-उपाय और समावेशन एक साथ संबोधित हों। सुधारों के प्रभाव का स्वतंत्र मूल्यांकन और चुनावी डेटा की पारदर्शिता भी संस्थागत होनी चाहिए।

कीवर्ड: चुनाव सुधार; भारतीय लोकतंत्र; निर्वाचन आयोग; राजनीति का अपराधीकरण; चुनावी वित्त; एक राष्ट्र एक चुनाव; मेटा-विश्लेषण

1. प्रस्तावना

1.1 चुनाव सुधारों की अवधारणा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 324 चुनावों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण की शक्ति निर्वाचन आयोग में निहित करता है। इसी प्रावधान ने आयोग को एक सशक्त संवैधानिक संस्था के रूप में स्थापित किया [1], [2]। 1951-52 के प्रथम आम चुनाव से अब तक चुनावों का आकार, मतदाताओं की संख्या और तकनीकी जटिलता कई गुना बढ़ी है। प्रारंभिक दशकों में मुख्य चिंता कुशल आयोजन, मतदाता पंजीकरण और बूथ-स्तरीय हिंसा थी। बाद के दशकों में धन-बल, बाहुबल और दलबदल जैसी प्रवृत्तियाँ प्रमुख चुनौती बनकर उभरीं। 'चुनाव सुधार' शब्द इसी क्रम में उन सभी विधायी, प्रशासनिक, न्यायिक और राजनीतिक उपायों के लिए प्रयुक्त होने लगा जो चुनावी प्रतिस्पर्धा को अधिक निष्पक्ष, पारदर्शी और जवाबदेह बनाने का प्रयास करते हैं [2]।

सुधार-विमर्श का संस्थागत इतिहास कई समितियों और आयोगों से होकर गुजरता है। 1990 की गोस्वामी समिति ने निर्वाचन प्रणाली, आयोग की संरचना, दलबदल और चुनावी खर्च जैसे विषयों पर व्यापक सिफारिशें दीं [3]। विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट (1999) ने चुनावी कानूनों में सुधार का समग्र ढाँचा प्रस्तावित किया, जिसमें राजनीतिक दलों का विनियमन और आंतरिक लोकतंत्र भी शामिल था [4]। 255वीं रिपोर्ट (2015) ने आपराधिक पृष्ठभूमि, चुनावी वित्त और पेड न्यूज जैसे विषयों पर नई सिफारिशें जोड़ीं [5]। 1998 की इंद्रजीत गुप्त समिति ने चुनावों के राज्य-वित्तपोषण का प्रश्न उठाया और मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवारों को आंशिक, वस्तु-रूप में सहायता की अवधारणा रखी [6]। इन रिपोर्टों की सिफारिशें अनेक बार दोहराई गईं, पर उनका बड़ा हिस्सा अब तक कानून में परिवर्तित नहीं हुआ। यही अंतर इस शोधपत्र की बुनियादी चिंता है।

1.2 वर्तमान परिदृश्य: प्रमुख चुनौतियाँ

समकालीन परिदृश्य में चुनौतियाँ बहुआयामी हैं। ADR और नेशनल इलेक्शन वॉच के विश्लेषण के अनुसार 2024 की लोकसभा के लगभग 46 प्रतिशत विजयी उम्मीदवारों ने अपने विरुद्ध आपराधिक मामले घोषित किए, और बड़ी संख्या करोड़पति उम्मीदवारों की थी [7]। ये आँकड़े वैष्णव के उस तर्क से मेल खाते हैं कि आपराधिक पृष्ठभूमि कई मतदाताओं और दलों के लिए 'जीतने की क्षमता' का संकेत बन जाती है [8]। महँगे होते चुनाव और अपारदर्शी राजनीतिक चंदा इस समस्या का दूसरा पहलू हैं [9]। चुनावी बॉन्ड योजना को उच्चतम न्यायालय द्वारा फरवरी 2024 में असंवैधानिक ठहराया जाना इसी बहस का निर्णायक मोड़ रहा [10]।

संस्थागत स्तर पर निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति का प्रश्न 2023 के अनूप बरनवाल निर्णय और उसके बाद बने नियुक्ति कानून के बीच नई संवैधानिक बहस का विषय बना [11], [12]। प्रक्रिया के स्तर पर 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' का प्रस्ताव कोविंद समिति की रिपोर्ट के बाद संविधान (129वाँ संशोधन) विधेयक, 2024 के रूप में संसद में पहुँचा [13], [14]। यह संयुक्त संसदीय समिति के विचाराधीन है, जिसका कार्यकाल 2026 में बढ़ाया गया [15]। मतदाता सूची के क्षेत्र में विशेष गहन पुनरीक्षण (SIR) पर उच्चतम न्यायालय ने मई 2026 में निर्वाचन आयोग के अधिकार को वैध ठहराया [16]। फिर भी मताधिकार से वंचित होने की आशंकाएँ विमर्श में बनी हुई हैं। इसी बीच संविधान (106वाँ संशोधन) अधिनियम, 2023 ने महिला आरक्षण का संवैधानिक मार्ग खोला, जिसका क्रियान्वयन परिसीमन पर निर्भर है [17]।

1.3 शोध के उद्देश्य, प्रश्न और योगदान

इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य भारत में चुनाव सुधारों पर हुए पूर्ववर्ती कार्यों का आलोचनात्मक संश्लेषण करना है। इसके उप-उद्देश्य हैं: (क) सुधार-प्रयासों की ऐतिहासिक प्रगति का विषयगत मानचित्रण करना, (ख) न्यायिक, विधायी और अकादमिक योगदानों की तुलनात्मक भूमिका समझना, (ग) साक्ष्य की गुणवत्ता और अंतरालों की पहचान करना, और (घ) भविष्य के सुधारों के लिए संतुलित रूपरेखा सुझाना। इसके लिए तीन शोध-प्रश्न तय किए गए हैं। पहला, कौन-से सुधार वास्तव में लागू हुए और किस माध्यम से? दूसरा, लागू सुधारों के प्रभाव पर उपलब्ध साक्ष्य कितना सुदृढ़ है? तीसरा, वर्तमान प्रस्ताव, विशेषतः एक साथ चुनाव, मतदाता सूची पुनरीक्षण और नियुक्ति-व्यवस्था, किन शर्तों पर लोकतांत्रिक गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं?

इस अध्ययन का योगदान तीन स्तरों पर है। पहला, यह समिति-रिपोर्टों, न्यायिक निर्णयों, विधायी दस्तावेजों और अनुभवजन्य शोध को एक ही विश्लेषणात्मक ढाँचे में रखता है, जो प्रायः अलग-अलग अनुशासनों में बिखरे रहते हैं। दूसरा, यह 2024 से 2026 के बीच के नवीनतम घटनाक्रम को पूर्ववर्ती साहित्य से जोड़ता है। तीसरा, यह नीतिगत सुझावों को साक्ष्य की मजबूती के अनुसार श्रेणीबद्ध करता है। समीक्षा-प्रक्रिया की पारदर्शिता के लिए PRISMA के रिपोर्टिंग सिद्धांतों से प्रेरित प्रारूप अपनाया गया है [18]। शोधपत्र की संरचना इस प्रकार है: खंड 2 में विषयगत सर्वेक्षण, खंड 3 में पद्धति, खंड 4 में पूर्ववर्ती कार्यों का समालोचनात्मक विश्लेषण, खंड 5 में विमर्श और खंड 6 में निष्कर्ष प्रस्तुत हैं।

2. साहित्य सर्वेक्षण

2.1 निर्वाचन संस्थाएँ और आयोग की स्वायत्तता

चुनाव सुधार साहित्य का पहला केंद्र निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता और विश्वसनीयता है। कुरैशी और श्रीधरन-वैष्णव जैसे अध्ययन दर्शाते हैं कि आयोग ने 1990 के दशक के बाद अनुच्छेद 324 की व्याख्या के सहारे अपनी भूमिका का विस्तार किया। आदर्श आचार संहिता, चुनावी व्यव-निगरानी, मतदाता पहचान-पत्र और बाद में EVM-VVPAT जैसी व्यवस्थाओं ने चुनावी प्रशासन की साख बढ़ाई [1], [2]। परंतु इन अध्ययनों में यह भी रेखांकित है कि आयोग की शक्ति मुख्यतः संवैधानिक व्याख्या और परंपरा पर टिकी रही, किसी विस्तृत संहिताबद्ध ढाँचे पर नहीं। इसलिए नियुक्ति और सेवा-शर्तों की संरचना का प्रश्न बार-बार उठता रहा [2]।

इस बहस में निर्णायक मोड़ अनूप बरनवाल बनाम भारत संघ (2023) रहा। संविधान पीठ ने कहा कि जब तक संसद कानून नहीं बनाती, मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य आयुक्तों की नियुक्ति प्रधानमंत्री, नेता प्रतिपक्ष और भारत के मुख्य न्यायाधीश की समिति की सलाह पर होगी [11]। संसद ने 2023 में नया अधिनियम पारित कर चयन समिति में मुख्य न्यायाधीश के स्थान पर प्रधानमंत्री द्वारा नामित केंद्रीय मंत्री को रखा [12]। समर्थकों के अनुसार यह संसद की विधायी क्षमता का वैध प्रयोग है। आलोचकों के अनुसार यह आयोग की स्वतंत्रता को कमजोर करने वाला परिवर्तन है, क्योंकि समिति में कार्यपालिका का बहुमत है। न्यायिक पहल की दृष्टि से भी साहित्य महत्वपूर्ण है। भारत संघ बनाम ADR (2002) में न्यायालय ने मतदाता के उम्मीदवारों की पृष्ठभूमि जानने के अधिकार को अनुच्छेद 19(1)(क) से जोड़ा [19]। PUCL (2003) ने इसे संपत्ति और दायित्वों की घोषणा तक विस्तृत किया [20]।

2.2 राजनीति का अपराधीकरण

अपराधीकरण पर साहित्य सबसे विस्तृत है। वैष्णव अपराध और चुनावी सफलता के संबंध को 'धन-बल और बाहुबल' के बाजार-तर्क से समझाते हैं। उनके अनुसार दल ऐसे उम्मीदवार चुनते हैं जो अपने संसाधन स्वयं जुटा सकें और जिनकी आपराधिक छवि कुछ मतदाताओं के लिए सुरक्षा या प्रभाव का संकेत हो [8]। ADR/NEW के आँकड़े इस प्रवृत्ति की निरंतरता दिखाते हैं [7]। न्यायिक प्रतिक्रिया क्रमिक रही। लिली थॉमस (2013) में न्यायालय ने दो वर्ष या अधिक की सजा पर सांसद-विधायक की तत्काल अयोग्यता को मान्यता दी और अपील लंबित रहने तक संरक्षण देने वाले प्रावधान को निरस्त किया [21]। पब्लिक इंटरैस्ट फाउंडेशन (2018) में अदालत ने आरोपित व्यक्तियों को चुनाव लड़ने से रोकने से इनकार किया, पर आपराधिक मामलों के व्यापक प्रकाशन के निर्देश दिए और संसद से कानून बनाने की अपेक्षा की [22]। PUCL (2013) ने नोटा का विकल्प देकर मतदाता को अस्वीकृति व्यक्त करने का मंच दिया [23]।

अनुभवजन्य शोध इस विषय में उपयोगी साक्ष्य देता है। बनर्जी और सहयोगियों के ग्रामीण उत्तर प्रदेश में किए गए प्रयोग में मतदाता आपराधिक या भ्रष्ट उम्मीदवारों के प्रति सामान्यतः उदासीन नहीं पाए गए। इससे सूचना-प्रकटीकरण का मूल्य रेखांकित होता है, यद्यपि जाति और दल की निष्ठा जैसे कारक प्रभाव को संतुलित करते हैं [24]। असर और नोवोसाद दिखाते हैं कि खनन उछाल के समय आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों की जीत की संभावना बढ़ती है, जो संसाधन-किराये और आपराधिक राजनीति के संबंध की ओर संकेत करता है [25]। प्रकाश, रॉकमोर और उप्पल के नज़दीकी मुकाबलों वाले विश्लेषण में आपराधिक आरोपों वाले विजेताओं के निर्वाचन क्षेत्रों में आर्थिक वृद्धि अपेक्षाकृत कम पाई गई [26]। इन तीनों अध्ययनों से अपराधीकरण की आर्थिक और लोकतांत्रिक कीमत का साक्ष्य मिलता है, पर इनके निष्कर्ष विशिष्ट संदर्भों पर आधारित हैं।

2.3 चुनावी वित्त और पारदर्शिता

चुनावी वित्त पर कपूर और वैष्णव का संपादित खंड भारत में राजनीतिक वित्त की संरचना का सबसे व्यापक अध्ययन माना जाता है। यह दिखाता है कि वास्तविक चुनावी खर्च और कानूनी सीमा के बीच गहरी खाई है, तथा नकद चंदा और अघोषित स्रोत प्रणाली की मुख्य कमजोरी है [9]।

इंद्रजीत गुप्त समिति ने राज्य-वित्तपोषण को कुछ शर्तों के साथ संवैधानिक रूप से स्वीकार्य माना था [6]। विधि आयोग की 255वीं रिपोर्ट ने भी चंदे की पारदर्शिता और दलों के लेखा-परीक्षण पर बल दिया [5]।

इसी पृष्ठभूमि में चुनावी बॉन्ड योजना लाई गई। उसे गुमनाम चंदे का औपचारिक रास्ता बताने वाले और 'काले धन से बचाव' का साधन मानने वाले, दोनों पक्ष थे। फरवरी 2024 में उच्चतम न्यायालय ने योजना को सूचना के अधिकार का उल्लंघन करने वाला मानकर असंवैधानिक घोषित किया और दानदाताओं की जानकारी के प्रकटीकरण का निर्देश दिया [10]। यह निर्णय न्यायिक सुधार की श्रृंखला का महत्वपूर्ण पड़ाव है। फिर भी साहित्य यह चेतावनी देता है कि केवल एक योजना के निरस्त होने से चंदे की संरचनात्मक समस्या हल नहीं होती, जब तक दलों के आय-व्यय का स्वतंत्र लेखा-परीक्षण और नकद चंदे की सीमा कठोर न हो [8], [9]।

2.4 मतदाता सूची, SIR और मताधिकार

मतदाता सूची की शुद्धता लोकतांत्रिक वैधता का आधार है। साहित्य दो परस्पर विरोधी जोखिम दिखाता है: दोहरे, मृत या स्थानांतरित मतदाताओं की प्रविष्टियाँ, और वैध मतदाताओं का अनुचित विलोपन। निर्वाचन आयोग ने 2025 से कई राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में विशेष गहन पुनरीक्षण (SIR) शुरू किया। इसके विरुद्ध याचिकाएँ उच्चतम न्यायालय पहुँचीं। मई 2026 में न्यायालय ने अनुच्छेद 324 और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 के अंतर्गत आयोग की शक्ति को वैध ठहराया और कहा कि यह प्रक्रिया स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के संवैधानिक लक्ष्य को आगे बढ़ाती है [16]।

यह निर्णय अभी नया है, इसलिए इसके प्रभाव पर पीयर-रिव्यू साहित्य सीमित है। अधिकांश विश्लेषण समाचार-विश्लेषण और विधिक टिप्पणियों में उपलब्ध हैं। समर्थन-पक्ष का तर्क है कि घर-घर सत्यापन से सूची की गुणवत्ता सुधरती है। चिंतित पक्ष का तर्क है कि प्रवासी श्रमिक, महिलाएँ और दस्तावेजों से वंचित समूह प्रक्रियात्मक बाधाओं के कारण बाहर हो सकते हैं। इसलिए इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य-आवश्यकता विलोपन और पुनः-समावेशन के आँकड़ों की स्वतंत्र समीक्षा की है [16]।

2.5 एक साथ चुनाव: तर्क और प्रतितर्क

एक साथ चुनाव के पक्ष में प्रमुख प्रस्तुतियाँ नीति आयोग का चर्चा-पत्र और संसदीय स्थायी समिति की 79वीं रिपोर्ट हैं। नीति आयोग के अध्ययन ने चुनावी खर्च में कमी, आदर्श आचार संहिता के कारण विकास-कार्यों में बाधा से राहत और सुरक्षा बलों की बार-बार तैनाती घटने के तर्क दिए तथा चरणबद्ध क्रियान्वयन का सुझाव दिया [27]। संसदीय स्थायी समिति ने भी चरणबद्ध मार्ग की अनुशंसा की और संवैधानिक संशोधनों की आवश्यकता रेखांकित की [28]। इसके बाद कोविंद समिति ने पहले चरण में लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने तथा दूसरे चरण में स्थानीय निकायों के चुनाव 100 दिनों के भीतर संयोजित करने का प्रस्ताव दिया। समिति के अनुसार परामर्श में भाग लेने वाले दलों में 32 ने समर्थन और 15 ने विरोध किया [13]।

विरोध-पक्ष के तर्क संघवाद, विधानसभाओं के कार्यकाल की स्वायत्तता, क्षेत्रीय मुद्दों के राष्ट्रीय मुद्दों में दब जाने की आशंका और मध्यावधि भंग होने की स्थिति में जटिल प्रावधानों पर केंद्रित हैं [13]। संविधान (129वाँ संशोधन) विधेयक, 2024 दिसंबर 2024 में लोकसभा में प्रस्तुत हुआ और संयुक्त संसदीय समिति को भेजा गया [14]। उपलब्ध समाचार स्रोतों के अनुसार समिति का कार्यकाल 2026 के मानसून सत्र तक बढ़ाया गया और वह विभिन्न हितधारकों से परामर्श कर रही है [15]। इस विषय पर अधिकांश आर्थिक अनुमान प्रक्षेपण-आधारित हैं। प्रत्यक्ष तुलनात्मक अनुभवजन्य साक्ष्य सीमित है [27], [28]।

2.6 महिला प्रतिनिधित्व और समावेशन: समावेशन पर साहित्य बताता है कि प्रतिनिधित्व केवल संख्या का प्रश्न नहीं, नीतिगत परिणामों का भी है। ADR/NEW के आँकड़े 2024 की लोकसभा में महिला सांसदों का अनुपात लगभग 14 प्रतिशत दर्शाते हैं [7]। संविधान (106वाँ संशोधन)

अधिनियम, 2023 लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में एक-तिहाई आरक्षण का प्रावधान करता है, पर इसका प्रभावी होना परिसीमन से जुड़ा है [17]। पंचायतों में आरक्षण पर हुए अध्ययन उत्साहजनक हैं। चट्टोपाध्याय और डुफ्लो ने दिखाया कि आरक्षित सीटों वाली पंचायतों में जल और सड़क जैसी सार्वजनिक वस्तुओं में निवेश का स्वरूप बदला [30]। बीमन और सहयोगियों ने पाया कि महिला नेतृत्व के संपर्क से महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह घटा [29]। ये निष्कर्ष विधायी स्तर के आरक्षण के संभावित लाभों के लिए सैद्धांतिक आधार देते हैं, यद्यपि स्तर और संदर्भ का अंतर ध्यान में रखना आवश्यक है।

3. कार्यप्रणाली

इस अध्ययन में समीक्षा-आधारित मेटा-विश्लेषण का प्रारूप अपनाया गया है, जो PRISMA 2020 के रिपोर्टिंग सिद्धांतों से प्रेरित है [18]। चुनाव सुधार विषय में स्रोतों की प्रकृति अत्यंत विविध है। इनमें सरकारी समिति-रिपोर्टें, विधि आयोग के प्रतिवेदन, संसदीय दस्तावेज़, न्यायिक निर्णय, पुस्तकें, पीयर-रिव्यू शोध-लेख और नागरिक संस्थाओं के विश्लेषण शामिल हैं। इसलिए एक ही प्रभाव-आकार (effect size) पर आधारित पारंपरिक सांख्यिकीय मेटा-विश्लेषण उपयुक्त नहीं था। उसके स्थान पर विषयगत मेटा-संश्लेषण चुना गया, जिसमें अलग-अलग प्रकार के साक्ष्य को सामान्य विश्लेषणात्मक श्रेणियों में रखकर तुलना की जाती है। खोज-रणनीति में तीन स्रोत-वर्ग लिए गए: (क) संस्थागत और विधिक दस्तावेज़ (समितियाँ, आयोग, संसद, न्यायालय), (ख) अकादमिक साहित्य (पुस्तकें और शोध-पत्र) और (ग) नवीनतम घटनाक्रम के लिए विश्वसनीय समाचार एवं आधिकारिक प्रसारण स्रोत। खोज-शब्दों में 'चुनाव सुधार', 'electoral reforms India', 'criminalisation of politics', 'political finance', 'simultaneous elections' और 'electoral rolls revision' जैसे हिंदी-अंग्रेज़ी पद शामिल रहे। कालावधि 1990 की गोस्वामी समिति से 2026 तक रखी गई, ताकि सुधार-प्रयासों का दीर्घकालिक प्रवाह और हाल के घटनाक्रम दोनों दिखें।

चयन और छँटाई के चरण में स्रोतों को चार मानकों पर परखा गया: विषय-प्रासंगिकता, स्रोत की प्रामाणिकता (आधिकारिक या पीयर-रिव्यू), पद्धतिगत स्पष्टता और भारतीय संदर्भ से सीधा संबंध। केवल वही स्रोत शामिल किए गए जो चुनावी संस्थाओं, उम्मीदवार-पृष्ठभूमि, चुनावी वित्त, मतदाता सूची, चुनाव-चक्र या प्रतिनिधित्व में से किसी एक पर प्रत्यक्ष साक्ष्य या प्राधिकृत विश्लेषण देते हैं। अप्रमाणित ब्लॉग, राय-आधारित लेख और ऐसे स्रोत जिनकी मूल जानकारी सत्यापित नहीं हो सकी, बाहर रखे गए। अंतिम संकलन में 30 स्रोत हैं, जिनकी सूची संदर्भ-खंड में दी गई है। प्रत्येक स्रोत को एक कोडिंग-तालिका में दर्ज किया गया, जिसमें स्रोत-प्रकार, वर्ष, विषय-श्रेणी, मुख्य निष्कर्ष और साक्ष्य-स्तर की प्रविष्टियाँ थीं। साक्ष्य-स्तर तीन रूपों में आँके गए: (i) अनुभवजन्य या कारणात्मक अध्ययन, (ii) विधिक या संस्थागत प्राधिकारी दस्तावेज़ और (iii) वर्णनात्मक या विश्लेषणात्मक रिपोर्ट। इससे यह स्पष्ट रहता है कि किसी निष्कर्ष का आधार कितना सुदृढ़ है।

संश्लेषण के चरण में कोडित सामग्री को छह विषयगत समूहों में रखा गया: निर्वाचन संस्थाएँ, अपराधीकरण, चुनावी वित्त, मतदाता सूची, चुनाव-चक्र और समावेशन। प्रत्येक समूह में तीन प्रश्न पूछे गए: क्या सुधार प्रस्तावित हुआ, क्या वह लागू हुआ, और लागू होने पर उसके प्रभाव का क्या साक्ष्य है। इस प्रकार प्रस्ताव, क्रियान्वयन और परिणाम के बीच की दूरी मापी जा सकी, जिसे इस शोधपत्र में 'क्रियान्वयन-अंतराल' कहा गया है। विभिन्न स्रोतों के निष्कर्षों में अंतर होने पर उनकी तुलना साक्ष्य-स्तर और संदर्भ के आधार पर की गई। अध्ययन की सीमाएँ स्पष्ट हैं। पहली, यह परिमाणात्मक पूलिंग नहीं है और इसमें प्रभाव-आकारों का संयुक्त अनुमान नहीं निकाला गया। दूसरी, समीक्षा का दायरा चयनित 30 स्रोतों तक सीमित है, इसलिए चुनाव सुधार के प्रत्येक पक्ष का समान गहराई से समावेश संभव नहीं हुआ। तीसरी, SIR, एक साथ चुनाव और नियुक्ति-कानून जैसे विषयों पर घटनाक्रम तेज़ी से बदल रहा है और उन पर पीयर-रिव्यू साहित्य अभी विकसित हो रहा है। इसलिए इनके बारे में कुछ निष्कर्ष अस्थायी माने जाने चाहिए।

4. पूर्ववर्ती कार्यों का समालोचनात्मक विश्लेषण

पूर्ववर्ती कार्यों का पहला उल्लेखनीय पक्ष सुधारों का स्रोत है। संकलित स्रोतों से स्पष्ट है कि सूचना का अधिकार, नोटा, दोषसिद्ध प्रतिनिधियों की तत्काल अयोग्यता और चुनावी बॉन्ड का निरस्तीकरण जैसे ठोस परिवर्तन अधिकतर न्यायिक हस्तक्षेप से आए हैं [10], [19]–[23]। यह एक ओर संविधान की जीवंत व्याख्या की सफलता है, दूसरी ओर इससे सुधार-प्रक्रिया की लोकतांत्रिक वैधता पर प्रश्न उठते हैं। न्यायालय अपनी सीमा में यह स्वयं स्वीकार करता है कि आरोपित उम्मीदवारों पर प्रतिबंध जैसे निर्णय संसद के दायरे में हैं [22]। इस प्रकार न्यायिक सुधार एक अस्थायी समाधान ज्यादा लगता है। स्थायी समाधान के लिए संसद की सक्रियता अनिवार्य है, जबकि समिति-रिपोर्टों की दशकों पुरानी सिफारिशें लंबित रहने का पैटर्न यह दर्शाता है कि दलों के सामूहिक हित अक्सर सुधार के विरुद्ध काम करते हैं [3]–[5]।

दूसरा पक्ष साक्ष्य की गुणवत्ता का है। अपराधीकरण पर साहित्य अपेक्षाकृत समृद्ध है, क्योंकि उम्मीदवारों के शपथ-पत्र आँकड़ों का स्थायी स्रोत बन गए हैं [7], [8]। परंतु ये आँकड़े स्व-घोषित हैं और लंबित मामलों में राजनीतिक द्वेष से दर्ज झूठे मामले भी शामिल हो सकते हैं। इसलिए 'आपराधिक मामलों' का प्रतिशत किसी उम्मीदवार की वास्तविक आपराधिकता का सीधा माप नहीं है। गंभीर और सामान्य आरोपों में अंतर करना आवश्यक है, जिसकी ओर ADR का विश्लेषण भी संकेत करता है [7]। कारणात्मक अध्ययनों में प्रकाश और सहयोगियों का काम नज़दीकी मुकाबलों की युक्ति से विश्वसनीयता बढ़ाता है, पर इसके निष्कर्ष चयनित निर्वाचन क्षेत्रों और कालावधि तक सीमित हैं [26]। असर और नोवोसाद का काम खनन-क्षेत्रों पर केंद्रित है और उसे हर प्रकार के निर्वाचन क्षेत्र पर सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता [25]। इस प्रकार अपराधीकरण का अनुभवजन्य साहित्य दिशा तो दिखाता है, पर नीति-निर्माण के लिए अलग-अलग संदर्भों में दोहराए गए अध्ययनों की आवश्यकता है।

तीसरा पक्ष चुनावी वित्त का है, जहाँ साहित्य में दो अंतराल दिखते हैं। पहला, वास्तविक चुनावी खर्च का अनुमान अधिकांशतः सर्वेक्षण, साक्षात्कार और अप्रत्यक्ष संकेतकों पर आधारित है, इसलिए उसमें अनिश्चितता है [9]। दूसरा, चुनावी बॉन्ड निर्णय के बाद उपलब्ध हुए दानदाता-आँकड़ों का व्यवस्थित अकादमिक विश्लेषण अभी सीमित है [10]। इसलिए निर्णय के व्यावहारिक असर, यानी दानदाताओं के व्यवहार में बदलाव और वैकल्पिक चैनलों की ओर प्रवाह, पर निष्कर्ष निकालना जल्दबाज़ी होगी। राज्य-वित्तपोषण पर इंद्रजीत गुप्त समिति के बाद गंभीर अनुभवजन्य मूल्यांकन या पायलट-प्रयोग कम ही दिखते हैं [6]। इसका अर्थ है कि एक प्रमुख सुधार-विकल्प पर साक्ष्य-आधारित बहस की ज़मीन अब भी कमज़ोर है।

चौथा पक्ष एक साथ चुनाव की बहस का है, जहाँ समर्थन और विरोध दोनों पक्षों में साक्ष्य का असंतुलन दिखता है। समर्थन में दिए गए खर्च-बचत और प्रशासनिक सुविधा के तर्क मुख्यतः अनुमान और प्रक्षेपण पर आधारित हैं [27], [28]। विरोध में संघवाद और मतदाता-व्यवहार के तर्क सैद्धांतिक दृष्टि से सशक्त हैं, पर उनके लिए भी भारतीय संदर्भ में पर्याप्त अनुभवजन्य परीक्षण उपलब्ध नहीं है [13]। कोविंद समिति की रिपोर्ट में दलों की राय का विवरण महत्वपूर्ण है, परंतु राय-संख्या को सुधार की वांछनीयता का प्रमाण नहीं माना जा सकता [13]। इसके अतिरिक्त, विधेयक अभी संयुक्त संसदीय समिति में विचाराधीन है, इसलिए इसके अंतिम स्वरूप पर कोई निश्चित निष्कर्ष संभव नहीं [14], [15]।

पाँचवाँ पक्ष मतदाता सूची और नियुक्ति-व्यवस्था का है, जहाँ घटनाक्रम साहित्य से तेज़ चल रहा है। SIR पर न्यायिक निर्णय के बाद की स्थिति में विलोपन-आँकड़ों, शिकायत-निवारण की प्रभावशीलता और हाशिए के समूहों पर प्रभाव का स्वतंत्र मूल्यांकन अभी प्रारंभिक है [16]। इसी तरह नियुक्ति-कानून पर अधिकांश चर्चा विधिक और राजनीतिक टिप्पणी के रूप में है, जबकि आयुक्तों की नियुक्ति-प्रक्रिया और आयोग के निर्णयों की निष्पक्षता के बीच संबंध पर अनुभवजन्य अध्ययन दुर्लभ हैं [11], [12]। अंत में, महिला प्रतिनिधित्व पर मजबूत प्रमाण पंचायत-स्तर के हैं [29], [30]। लोकसभा और विधानसभाओं में आरक्षण का प्रभाव अभी भविष्य की बात है [17], और स्तर के अंतर के कारण पंचायत के निष्कर्षों को सीधे वहाँ लागू करना जोखिमपूर्ण होगा।

5. विमर्श

संश्लेषण से पहला निष्कर्ष यह निकलता है कि भारत में चुनाव सुधार 'सूचना-केंद्रित' और 'निषेध-केंद्रित' दो धाराओं में बँटे हैं। सूचना-केंद्रित सुधार, जैसे शपथ-पत्र, संपत्ति-घोषणा और चंदे के प्रकटीकरण का आग्रह, अपेक्षाकृत सहजता से आगे बढ़े, क्योंकि वे सीधे मतदाता के अधिकार पर टिके हैं [19], [20], [22]। निषेध-केंद्रित सुधार, जैसे आरोपित उम्मीदवारों पर रोक या दलों पर कठोर वित्तीय अनुशासन, कमजोर रहे, क्योंकि इनमें दलों के अपने हितों पर सीधा नियंत्रण निहित है [5], [22]। इसका अर्थ है कि भविष्य में सबसे प्रभावी रणनीति वह होगी जो सूचना के उपयोग को दलों की आंतरिक जवाबदेही से जोड़े। उदाहरण के लिए, अपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवार के चयन का कारण सार्वजनिक करने की बाध्यता, तेज़ सुनवाई की व्यवस्था और दलों के लेखा-परीक्षण का स्वतंत्र ढाँचा साथ-साथ लागू हों [5], [8], [9]।

दूसरा, संस्थागत स्वतंत्रता और चुनावी विश्वास का रिश्ता केवल नियुक्ति-प्रक्रिया तक सीमित नहीं है। नियुक्ति-व्यवस्था पर संसद और न्यायालय की अलग-अलग दिशाएँ यह दिखाती हैं कि संस्थागत डिज़ाइन पर राजनीतिक सहमति अभी नहीं बनी है [11], [12]। सुझाव-योग्य मार्ग यह है कि चयन-प्रक्रिया में पारदर्शी मानदंड, लिखित कारण और विपक्ष की सार्थक भागीदारी जैसे उपाय जोड़े जाएँ, चाहे समिति का संयोजन कुछ भी हो। इसके साथ आयोग के निर्णयों की सार्वजनिक व्याख्या और डेटा-प्रकाशन को भी बढ़ाया जाए। विश्वसनीयता केवल निष्पक्ष होने से नहीं, निष्पक्ष दिखने और उसका प्रमाण देने से भी बनती है [2]।

तीसरा, एक साथ चुनाव और SIR जैसी बड़ी प्रक्रियात्मक पहलों में 'क्या लक्ष्य वांछनीय है' और 'क्या साधन सुरक्षित हैं' के प्रश्न अलग रखने चाहिए। एक साथ चुनाव के समर्थक खर्च, शासन-निरंतरता और संसाधनों के बेहतर उपयोग की बात करते हैं [27], [28]। विरोधी संघीय संतुलन और क्षेत्रीय स्वायत्तता की चिंता उठाते हैं [13]। इन दोनों तर्कों का वजन तभी आँका जा सकता है जब पायलट-स्तर के अध्ययन, स्वतंत्र लागत-लाभ मूल्यांकन और मध्यावधि भंग होने जैसी स्थितियों के लिए स्पष्ट प्रावधान उपलब्ध हों [14], [15]। SIR में न्यायालय ने आयोग की शक्ति को वैध माना है, इसलिए अगला प्रश्न क्रियान्वयन की गुणवत्ता का है। पारदर्शी विलोपन-सूचियाँ, अपील की त्वरित व्यवस्था, प्रवासी और वंचित समूहों के लिए सुगम दस्तावेज़ प्रक्रिया और स्वतंत्र ऑडिट इस प्रक्रिया की स्वीकार्यता तय करेंगे [16]।

चौथा, भविष्य की संभावनाओं में तकनीक और समावेशन की भूमिका महत्वपूर्ण है। डिजिटल उपकरण मतदाता सूची की शुद्धता, चंदे की निगरानी और शिकायत-निवारण में उपयोगी हो सकते हैं, पर तकनीक के साथ डेटा-सुरक्षा और प्रक्रियात्मक न्याय की सुरक्षा भी आवश्यक है। महिला आरक्षण के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए परिसीमन की प्रक्रिया और दलों के भीतर महिलाओं की भागीदारी, दोनों पर ध्यान चाहिए [17], [29], [30]। अंततः अनुसंधान-एजेंडा के रूप में तीन प्राथमिकताएँ उभरती हैं: चुनावी बॉन्ड के बाद के चंदा-डेटा का अनुभवजन्य विश्लेषण, SIR के विलोपन-पुनर्समावेशन का स्वतंत्र मूल्यांकन और एक साथ चुनाव के संभावित प्रभावों पर मतदाता-व्यवहार आधारित अध्ययन।

6. निष्कर्ष

इस समीक्षा से स्पष्ट होता है कि भारत में चुनाव सुधार एक सतत, बहुस्तरीय और विवादित प्रक्रिया है। निर्वाचन आयोग की संस्थागत क्षमता और न्यायपालिका की सक्रियता ने कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ दी हैं: उम्मीदवारों की सूचना का अधिकार, नोटा, दोषसिद्ध प्रतिनिधियों की अयोग्यता और चुनावी बॉन्ड का निरस्त होना [10], [19]–[23]। साथ ही समिति-रिपोर्टों की सिफारिशों का क्रियान्वयन-अंतराल बना हुआ है [3]–[6]। अपराधीकरण, चुनावी वित्त और दलों की आंतरिक जवाबदेही जैसे मूल प्रश्न संरचनात्मक हैं और केवल न्यायिक आदेशों से हल नहीं हो सकते [7]–[9]।

भविष्य के लिए तीन सूत्र उभरते हैं। पहला, सुधारों को पैकेज के रूप में देखा जाए, जिसमें संस्थागत स्वतंत्रता, वित्तीय पारदर्शिता, दल-सुधार और मतदाता-समावेशन साथ चलें। दूसरा, एक साथ चुनाव और मतदाता सूची पुनरीक्षण जैसे बड़े प्रस्ताव साक्ष्य, संघीय संतुलन और मताधिकार-

संरक्षण की शर्तों के साथ आगे बढ़ें [13]–[16]। तीसरा, हर सुधार के साथ स्वतंत्र मूल्यांकन और डेटा-पारदर्शिता को संस्थागत किया जाए, ताकि नीति-निर्माण अनुमान से नहीं, प्रमाण से चले। यदि ये सिद्धांत अपनाए जाएँ तो भारत का चुनावी लोकतंत्र अपनी विशाल जनसंख्या के अनुरूप विश्वसनीयता और गुणवत्ता, दोनों में आगे बढ़ सकता है।

संदर्भ

- [1] एस. वाई. कुरैशी, 'एन अनडॉक्यूमेंटेड वंडर: द मेकिंग ऑफ द ग्रेट इंडियन इलेक्शन'। नई दिल्ली, भारत: रूपा पब्लिकेशन्स, 2014।
- [2] ई. श्रीधरन और एम. वैष्णव, "इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया" (भारत निर्वाचन आयोग), 'रीथिंकिंग पब्लिक इंस्टीट्यूशंस इन इंडिया' में; संपादक: डी. कपूर और पी. बी. मेहता। नई दिल्ली, भारत: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2017।
- [3] विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, 'चुनाव सुधार समिति (दिनेश गोस्वामी समिति) की रिपोर्ट', नई दिल्ली, भारत, 1990।
- [4] भारतीय विधि आयोग, "चुनाव कानूनों में सुधार", रिपोर्ट संख्या 170, नई दिल्ली, भारत, मई 1999।
- [5] भारतीय विधि आयोग, "चुनाव सुधार", रिपोर्ट संख्या 255, नई दिल्ली, भारत, मार्च 2015।
- [6] भारत सरकार, 'चुनावों के लिए सरकारी फंडिंग पर बनी समिति (इंद्रजीत गुप्ता समिति) की रिपोर्ट', नई दिल्ली, भारत, 1998।
- [7] एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स और नेशनल इलेक्शन वॉच, "विजेताओं की आपराधिक पृष्ठभूमि, वित्तीय स्थिति, शिक्षा, लिंग और अन्य विवरणों का विश्लेषण: लोकसभा चुनाव 2024", नई दिल्ली, भारत, जून 2024।
- [8] एम. वैष्णव, 'व्हेन क्राइम पेज: मनी एंड मसल इन इंडियन पॉलिटिक्स'। न्यू हेवन, सीटी, यूएसए: येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2017।
- [9] डी. कपूर और एम. वैष्णव (संपादक), 'कॉस्ट्स ऑफ डेमोक्रेसी: पॉलिटिकल फाइनेंस इन इंडिया'। नई दिल्ली, भारत: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018।
- [10] एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स बनाम भारत संघ, रिट याचिका (W.P.) (C) 2017 का नंबर 880 (इलेक्टोरल बॉन्ड मामला), भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 15 फरवरी, 2024।
- [11] अनूप बरनवाल बनाम भारत संघ, (2023) 6 SCC 161, भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2 मार्च, 2023।
- [12] मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त (नियुक्ति, सेवा की शर्तें और कार्यकाल) अधिनियम, 2023, अधिनियम संख्या 28 (2023), भारत, 2023।
- [13] एक साथ चुनाव (साइमल्टेनियस इलेक्शन) पर उच्च स्तरीय समिति, एक साथ चुनाव पर उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट, भारत सरकार, नई दिल्ली, भारत, मार्च 2024।
- [14] संविधान (129वां संशोधन) विधेयक, 2024, लोकसभा में पेश, नई दिल्ली, भारत, 17 दिसंबर, 2024।
- [15] "लोकसभा ने 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' पैनल का कार्यकाल मानसून सत्र तक बढ़ाया," बिजनेस स्टैंडर्ड, 18 मार्च, 2026। [ऑनलाइन]। उपलब्ध: https://www.business-standard.com/india-news/lis-extends-tenure-of-one-nation-one-election-panel-till-monsoon-session-126031800544_1.html
- [16] "सर्वोच्च न्यायालय ने मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण (स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन) को वैध ठहराया," न्यूज ऑन AIR, ऑल इंडिया रेडियो, 27 मई, 2026। [ऑनलाइन]। यहाँ उपलब्ध: <https://newsonair.gov.in/supreme-court-upholds-legality-of-ecis-special-intensive-revision-of-electoral-rolls/>
- [17] संविधान (एक सौ छठा संशोधन) अधिनियम, 2023 (नारी शक्ति वंदन अधिनियम), भारत, 2023।

- [18] एम. जे. पेज और अन्य, “द PRISMA 2020 स्टेटमेंट: व्यवस्थित समीक्षाओं (systematic reviews) की रिपोर्टिंग के लिए एक अद्यतन दिशानिर्देश,” BMJ, खंड 372, पृष्ठ n71, 2021।
- [19] यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, (2002) 5 SCC 294, भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2 मई, 2002।
- [20] पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2003) 4 SCC 399, भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2003।
- [21] लिली थॉमस बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2013) 7 SCC 653, भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 10 जुलाई, 2013।
- [22] पब्लिक इंटरेस्ट फाउंडेशन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2019) 3 SCC 224, भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 25 सितंबर, 2018।
- [23] पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2013) 10 SCC 1 (NOTA मामला), भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 27 सितंबर, 2013।
- [24] ए. बनर्जी, डी. पी. ग्रीन, जे. मैकमैनस, और आर. पांडे, “क्या गरीब मतदाता इस बात को लेकर उदासीन हैं कि चुने गए नेता अपराधी हैं या भ्रष्ट? ग्रामीण भारत में एक विनेट प्रयोग (vignette experiment),” पॉलिटिकल कम्युनिकेशन, खंड 31, अंक 3, पृष्ठ 391–407, 2014.
- [25] एस. अशर और पी. नोवोसाड, “रेंट-सीकिंग (अनुचित लाभ की कोशिश) और आपराधिक राजनेता: खनन में तेजी के दौर के साक्ष्य,” रेव. इकोनॉमिक स्टैटिस्टिक्स, खंड 105, अंक 1, 2023.
- [26] एन. प्रकाश, एम. रॉकमोर, और वाई. उप्पल, “क्या आपराधिक आरोपों वाले राजनेता आर्थिक परिणामों को प्रभावित करते हैं? भारत से साक्ष्य,” जे. डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स, खंड 141, लेख संख्या 102370, 2019.
- [27] बी. देबरॉय और के. देसाई, “एक साथ चुनाव (साइमल्टेनियस इलेक्शन) का विश्लेषण: क्या, क्यों और कैसे,” नीति आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली, भारत, चर्चा पत्र, जनवरी 2017.
- [28] कार्मिक, लोक शिकायत, कानून और न्याय संबंधी संसदीय स्थायी समिति, “लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने की व्यावहारिकता,” 79वीं रिपोर्ट, राज्यसभा सचिवालय, नई दिल्ली, भारत, दिसंबर 2015.
- [29] एल. बीमन, आर. चट्टोपाध्याय, ई. डुफ्लो, आर. पांडे, और पी. टोपालोवा, “शक्तिशाली महिलाएं: क्या उनके संपर्क में आने से पूर्वाग्रह कम होता है?” क्वार्टरली जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स, खंड 124, अंक 4, पृष्ठ 1497–1540, 2009.
- [30] आर. चट्टोपाध्याय और ई. डुफ्लो, “नीति निर्माता के रूप में महिलाएं: भारत में एक यादृच्छिक (रैंडमाइज्ड) नीति प्रयोग से साक्ष्य,” इकोनोमेट्रिका, खंड 72, अंक 5, पृष्ठ 1409–1443, 2004.

Cite the Article:

जैन, हर्षा, कुमार, डॉ. सरोज. (2026). भारतीय निर्वाचन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता: पारदर्शिता, जवाबदेही एवं लोकतांत्रिक सुदृढ़ीकरण का अध्ययन. Shiksha Samvad: International Open Access Peer-Reviewed & Refereed Journal of Multidisciplinary Research, 4(1), 350–358. DOI: - <https://doi.org/10.64880/shikshasamvad.v4i1.41>

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, and opinions expressed in this publication are solely those of the author(s). The publisher and editorial team are not responsible for any errors, claims, or consequences arising from the use of the published content.